



आओ जिहाद करें

विचारक: सैयद अब्दुल्लाह तारिक

लेखक: मोहम्मद जुबैर

उसके नाम से जो सबका एकमात्र कर्ता, धर्ता एवं संहर्ता है

परन्तु उस एक से जुड़ कर एकत्रित होने के स्थान पर समुदायों
ने जुदा जुदा राम राज्य व खिलाफत की योजनाएं बनाईं

आज्ञा जिहाद करें

लेखक

मुहम्मद जुबैर खाँ

इस पुस्तक के
सर्वाधिकार सुरक्षित हैं।
प्रकाशक की पूर्व अनुमति
के बिना इसके किसी
भाग को किसी भी प्रचार
या प्रसार माध्यम से
प्रकाशित अथवा प्रसारित
करना निषिद्ध है।

Rs. 35.00

रौशनी पब्लिशिंग हाउस
बाजार नसरल्लाह खाँ
रामपुर उ.प्र
244901

आज्ञा निलाट कर

प्रस्तावना

जि

हाद उन कुरआनी कर्तव्यों में से है जिन के विषय में गैर मुस्लिम भी और बहुत से मुसलमान भी आन्तियों के शिकार रहे हैं। नमाज़-रोज़े जैसी इबादतों में ग़लती होजाए तो अन्य लोगों या समाज पर इसका तुरन्त या सीधा प्रभाव नहीं पड़ता। जिहाद की बात इससे भिन्न है। जिहाद यद्यपि शान्ति के लिये निरन्तर संघर्ष है फिर भी क्योंकि विशेष परिस्थितियों में संघर्ष सशस्त्र भी होसकता है। इस लिये जिहाद का प्रसंग न समझने से न केवल समाज प्रभावित होता है बल्कि एक पवित्र कार्य आतंकवाद तक का रूप लेलेता है और इस्लाम भी बदनाम होता है। यह पुस्तिका उन आन्तियों को दूर करने के लिये लिखी गई है जो जिहाद के विषय में पाई जाती हैं। जिहाद चाहे सामान्य हो या परिस्थितिवश सशस्त्र, समाज की भलाई के लिये ही होता है। जिससे सामान्य जन भयभीत हों और उनके जान-माल सुरक्षित न रहें वह जिहाद नहीं है और उससे सब को एक जुट होकर लड़ने की ज़खरत है।

आशा है कि जिहाद का वस्तिविक स्वरूप समझ लेने के बाद मुसलमान व गैर मुस्लिम दोनों इस्लामी जिहाद और आतंकवाद के बीच अन्तर समझ सकेंगे।

इस पुस्तिका की तैयारी के लिये मैं धार्मिक अध्ययन के विशेषज्ञ आदरणीय सैय्यद अब्दुल्लाह तारिक का अति आभारी हूँ जिन्होंने इस संवेदनीय विषय पर मेरा वैचारिक मार्गदर्शन किया।

मुहम्मद जुबैर
शाहीन बाग़, नई दिल्ली

ग़लतफ़हमियाँ :

इस्लाम क्या है? मुस्लमान कौन है? जिहाद क्या है? आतंकवाद क्या है? आज यह प्रश्न प्रायः हर भारतीय के मस्तिष्क में गूंज रहे हैं। कोई इनका उत्तर तलाश करने का प्रयत्न करता है, कोई सिफ़ सोच कर छोड़ देता है। ऐसे लोगों की संख्या शायद नहीं के बराबर है जो सत्य जान पाते हैं वरना अधिकतर नीम हकीमों के हाथों में पड़ने के कारण असन्तुष्ट ही रहते हैं। न केवल गैर मुस्लिमों में बल्कि मुसलमानों में भी बहुत बड़ी संख्या उनकी है जो न केवल इन प्रश्नों का उत्तर बल्कि मुस्लिम शब्द का अर्थ भी नहीं जानते। ‘इस्लाम में जिहाद’ के विषय से पहले एक मूलभूत तथ्य की चर्चा भी आवश्यक है।

ऐसा क्यों होता है कि जब भी आतंकवाद का नाम आता है तो सबसे पहले मस्तिष्क में जो चित्र उभरता है वह किसी दाढ़ी वाले मुसलमान का होता है? क्यों एक बड़ी संख्या की जुबान पर यह है कि चाहे हर मुसलमान आतंकवादी न हो परन्तु हर आतंकवादी मुसलमान ही होता है? इस्लाम की दृष्टि में तो वह आस्तिक ही नहीं जिसके हाथों और जुबान से उसके पड़ोसी सुरक्षित न हों, यह ईशदूत हज़रत मुहम्मद स. का फतवा है। हर आतंकवादी मुसलमान क्यों बना दिया जाता है? या तो हम सत्य जानना नहीं चाहते या जान बूझ कर अनजान बने हुए हैं। कथित मुसलमानों द्वारा आतंकवाद की खबर यदि 3-4 महीने में एक बार आती हैं तो नक्सलवादियों के आतंक के समाचार प्रतिदिन अख़बारों में होते हैं। जिन बच्चों के हाथों में पेंसिल या खिलौने होने चाहिये उनके हाथों में बन्दूक धमा दी जाती है। उनके दिलों में अपने ही देशवासियों के प्रति घृणा भर दी जाती है। यदि कथित मुसलमान आतंकवादी की ट्रेनिंग पाकिस्तान में होती है तो नक्सलवादियों के ट्रेनिंग कैम्प स्वयं भारत की सीमा के

अंदर हैं और एक नहीं बल्कि गाँव के गाँव उन्हीं के हैं। साधी प्रज्ञा सिंह ठाकुर और लेफ्टीनेंट कर्नल प्रधाद पुरोहित हिन्दू आतंकवाद के प्रतिनिधि हैं। अलकायदा या तालिबान तो विदेशी मूल के हैं परन्तु 'अभिनव भारत' स्वदेशी आतंकवादी संगठन है। सिक्खों का आतंक खालिस्तान बनाने के नाम पर लम्बे समय तक चला और पूर्व प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्द्रा गांधी की हत्या सहित हजारों लोगों के संहार को अभी अधिक समय नहीं बीता है। विश्व के सब से ख़तरनाक आतंकवादी व देश के एक और पुर्व प्रधान मन्त्री श्री राजीव गांधी के हत्यारों तामिल टाइगर्स की गिनती भी यदि हिन्दुओं में होती है तो उत्पा आतंकवादी इसाई ह। रात-दिन टीवी व समाचार पत्रों की ख़बरों के बावजूद यदि एक बड़ी संख्या यह कहती सुनाई दे कि हर आतंकवादी मुसलमान होता है तो यह ब्रेन-वाशिंग का स्पष्ट उदाहरण ही तो है।

आईये अब उन प्रश्नों पर विचार करें जो इस पुस्तिका के आरंभ में उठाए गए थे।

इस्लाम और मुसलमान?

इस्लाम शब्द के दो अर्थ हैं। शान्ति व संपूर्ण आत्म सम्प्रण। सबके मालिक के प्रति ऐसा समर्पण कि उसकी मर्जी के सामने अपनी हर इच्छा समर्पित हो जाए। इस्लाम को ग्रहण करने वाला मुस्लिम है। मालिक की सृष्टि से नफरत करने वाला मुस्लिम नहीं हो सकता। मालिक ने इन्सान को संसार में क्यों पैदा किया? उसकी मानव जाति से क्या अपेक्षा है? हमारा लक्ष्य क्या हो, ज़िम्मेदारियाँ क्या हैं? यह जानना प्रत्येक मानव का कर्तव्य है। अनुमान प्रायः ग़लत होते हैं। उसने समय-समय पर मार्गदर्शन के लिये पृथ्वी के हर क्षेत्र में मानव जाति में ईशदों को जन्म देकर अपनी वाणी उनपर अवतरित की।

सभी ईशदूत सच्चे थे और अपने-अपने क्षेत्र की भाषाओं व अपने समय की शैली में सब ने ईश्वर का एक ही सन्देश मानव जाति को पहुँचाया। जो व्यक्ति ईशवाणी के प्रतिकूल अपनी इच्छाओं पर चले वह सरकारी रिकार्ड में तो मुसलमान हो सकता है, ईश्वर की सूची में नहीं। मुस्लिम वह है जो पूरी तरह इस्लाम में आगया हो और 'इस्लाम' अरबी शब्द 'सल्म' से बना है जिसका एक अर्थ है 'शान्ति'। इस प्रकार मुस्लिम का अर्थ हुआ शान्ति फैलाने वाला या शान्ति की स्थापना करने वाला, शान्तिप्रिय। जो अशान्ति फैलाए वह मुस्लिम नहीं हो सकता। इसी प्रकार इस्लाम का आधार 'ईमान' (आस्था) है और 'ईमान' 'अमून' से बना है। इसका अर्थ भी शान्ति है। एक मुसलमान में ईमान का होना ज़रूरी है। यदि मुसलमान में 'ईमान' नहीं तो चाहे वह कितना भी बड़ा मुसलमान कहलाये लेकिन इस्लाम की दृष्टि में वह न आस्तिक है न मुस्लिम। ईमान और इस्लाम के साथ कुरआन अमल-ए-सालेह (सुकर्म) को भी नजात (मुक्ति) के लिये ज़रूरी बताता है। 'सालेह' (नेक और अच्छा) शब्द का मूल 'सुलह' (संधि) है। अमल-ए-सालेह का अर्थ है ऐसा अमल (काम) जो सुलह अर्थात् शान्ति के लिये किया जाए। इस प्रकार कुरआन पूरी तरह शान्ति का ही पैग़ाम और सदेश है। जो कुरआन पर सच्चाई से अमल करेगा वह शान्ति का घजारोहक होगा। अशान्ति फैलाने वाला कुरआन का अनुयायी नहीं हो सकता।

बदले के स्थान पर संयम और क्षमा का सिद्धान्त :

अत्याचार या ज्यादती का बराबर का बदला लेने की तो इस्लाम इजाज़त देता है परन्तु कुरआन बताता है कि अल्लाह को पसंद क्षमा कर देना ही है। बदला लेने पर पाप न होगा लेकिन क्षमा करने पर अल्लाह की करुणा और पुण्य हाथ आएगा।

“यदि तुम बदला लो तो बस उतना ही जितना तुम्हें नुकसान पहुँचाया गया हो और यदि धैर्य से काम ले सको तो यह धैर्य रखने वालों के लिये (ईश्वर की दृष्टि में) बेहतर है। धैर्य से काम लो और तुम्हारा धैर्य रखना अल्लाह ही से संबद्ध है। उनपर दुखी न हो और उनकी चालों पर तंग दिल न बनो ”। (कु. 16:126-127)

“जिस किसी ने अपने ऊपर अत्याचार के बाद बदला लिया, उन पर कोई दोष नहीं। दोष तो उन पर है जो लोगों पर अत्याचार करते हैं और जो पथी पर अनाधिकरिक उत्पात करते हैं। उनके लिये पीड़ामय यातना है परन्तु जिसने धैर्य रखा और क्षमा कर दिया तो निस्सन्देह यह बहुत बृढ़ निश्चय का काम है।” (कु. 42:41-43)

“बुराई और भलाई समान नहीं हैं। बुराई को भले व्यवहार द्वारा दूर करोगे तो यह होगा कि जिस से तुम्हारी दुश्मनी थी वह भी अभिन्न मित्र बन जाएगा। परन्तु यह उसी से होसकता है जो धैर्यवान है और यह स्तर उसको ही प्राप्त होता है जो बड़ा भाग्यशाली है”। (कु. 41:34-35)

अंतिम ईशदूत स. के जीवन में कुरआन के यह आदर्श प्रत्यक्ष नज़र आते हैं। मक्के की विजय के दिन उनके समक्ष अति प्रिय चाचा ह. ‘हमज़ा’ के हत्यारे ने आकर कहा वह इस्लाम स्वीकार करने आया है, उसे क्षमा मिली। ‘हिन्दा’ भी इसी लिये आई जिसने मृत हमज़ा के शव के टुकड़े करके उनका कलेजा चबाया था। इस्लाम स्वीकार करते समय भी उसने ईशदूत स. से बड़े अपमानजनक लहजे में बात की। उसे भी बिना क्षमा माँगे क्षमा किया। जिन्होंने उन पर और उनके साथियों पर एक दिन नहीं बल्कि पूरे 13 साल तक अत्याचार किये उनके लिये विजय के दिन सार्वजनिक माफ़ी का

एलान किया। ‘ताएफ़’ क्षेत्र के लोगों ने शान्ति के दूत पर इतने पत्थर बरसाए थे कि पूरा शरीर लहू से नहा गया था। जूते रक्त से पावों में चिपक गए। ईश्वर की ओर से फ़रिशते ने आकर उनसे अत्याचारियों को दण्ड देने की आज्ञा चाही परन्तु उसे मना करते हुए कहा कि इन्हें नष्ट न करो, ये नहीं तो शायद इनकी संतान ईमान ले आए। और फिर एक दिन आया जब ताएफ़ वालों ने देखा कि मुहम्मद स. अरब के सबसे शक्तिशाली व्यक्ति बन चुके हैं तो वे भी सिर झुकाए हाज़िर हुए। उनके लिये भी शान्तिदूत के फैसले में माफ़ी थी।

जिहाद :

जिहाद अरबी शब्द ‘जौहद’ से बना है जिसका अर्थ है ‘ईशमार्ग में अम्न या शान्ति के लिये निरन्तर कोशिश’। जिहाद के नाम पर निर्दोष लोगों की हत्या करने वाले और आतंक फैलाने वाले, मुजाहिदीन नहीं बल्कि आतंकवादी होंगे।

इन्सानी जान को ईश्वर ने सम्मानित ठहराया है। कुरआन नेक लोगों के गुणों की व्याख्या करते हुए कहता है कि —

“वह उस जान को जिसे ईश्वर ने सम्मानित ठहराया है। बिना कारण हलाक नहीं करते और न बलात्कार करते हैं और जो कोई ऐसा करेगा, किये का दण्ड पायेगा। (क. 25:68)

यही सिद्धान्त विस्तार से दूसरे स्थान पर देखिये :

“जो किसी की हत्या करे, बिना इसके कि उसने किसी की हत्या की हो अथवा पृथ्वी पर उत्पात किया हो, मानो उसने समस्त मानव जाति की हत्या की और यदि किसी ने किसी

की जान बचाई तो यह ऐसा है जैसे उसने समस्त मानव जाति को जीवन दिया। इन लोगों के पास हमारे संदेश वाहक हमारे संदेश लेकर आये परन्तु इनमें इसके उपरान्त भी ऐसे हैं जो सीमाओं का उल्लंघन कर जाते ह”। (कु. 5:32)

कुरआन में युद्ध से संबंधित जितनी आथरते हैं उन्हें भ्रम फैलाने वाले लोग संदर्भ से काट देते हैं और केवल वह अंश निकालकर सामने रखते हैं जहाँ युद्ध करो और हत्या करो के शब्द हैं। जब तक युद्ध थोप न दिया जाए, इस्लाम युद्ध से बचने का आदेश देता है और युद्ध के समय भी सीमाओं का उल्लंघन न करने का आदेश है। कुरआन शत्रुओं के लिये भी संयम और न्याय से काम लेने का उपदेश देता है।

“हे ईमान वालो, अल्लाह के लिये पूर्ण नियमित एवं न्याय के साक्षी बनो और किसी वर्ग की शत्रुता तुम्हें इस बात पर मजबूर न करदे कि तुम भी (उसके साथ) ज़्यादती करने लगो। न्याय से काम लो क्योंकि यह धर्मनिष्ठा के अति समीप है और अल्लाह की अप्रसन्नता से बचते रहो। अल्लाह को तुम्हारे सभी कर्मों की ख़बर है”। (कु. 5:8)

जिहाद का अर्थ लड़ाई नहीं है। लड़ाई के लिये कुरआन में ‘किताल’ शब्द का प्रयोग हुआ है। शान्ति के लिये निरन्तर कोशिश में कभी ऐसी परिस्थितियाँ आसकती हैं जब शस्त्र उठाना ज़रूरी हो जाए। यदि शान्ति के मार्ग में परिस्थितिवश कभी किताल (संग्राम) आवश्यक होजाए तो जिहाद वह तभी हो सकता जब सशस्त्र जिहाद की सभी शर्तें पूरी हों। सशस्त्र जिहाद की शर्तें निम्न हैं।

युद्ध की परिस्थितियाँ :

कुरआन केवल तीन परिस्थितियों में शस्त्र उठाने की बात करता है।

1. आत्मरक्षा के लिये (अनुमति) :

“जिन लोगों के विरुद्ध लड़ाई छेड़ी गई उन्हें अनुमति दी जाती है (कि वह भी मुकाबले में उठ खड़े हों) क्योंकि उन पर अत्याचार हुआ। निस्सदेह ईश्वर उनकी सहायता करने में समर्थ है। (यह इजाज़त उनके लिये है) जिन्हें अनाधिकारिक उनके घरों से निकाला गया, केवल इस कारण से कि वह कहते थे कि ईश्वर ही हमारा पालनहार है...”। (कु. 22:39-40)

आत्म रक्षा के लिये शस्त्र उठाने की वैधानिकता का सिद्धान्त सर्वमान्य है। ध्यान रहे कि आत्मरक्षा का यह सिद्धान्त भी सर्वमान्य है कि यदि आक्रमणकारियों की ओर से हमले की पुर्व सूचना हो और इसके प्रामाणिक संकेत स्पष्ट दिखलाई दें कि वह जंग की पूरी तैयारी सहित अवसर की प्रतीक्षा में हैं, उस समय उनके आक्रमण की प्रतीक्षा न करके स्वयं हमला किया जासकता है। इस सिद्धान्त को ‘आत्मरक्षा में हमला’ (Attack in self defence) कहा जाता है।

2. अत्याचार व दमन की समाप्ति के लिये हमला (आदेश) :

“और ईश्वर के मार्ग में युद्ध न करने में तुम को क्या आपत्ति हो सकती है जब कि बहुत से दबे कुचले पुरुष, स्त्रियाँ और बच्चे (असहाय होकर) प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि हे हमारे पालनहार इस बस्ती से हमको निकाल ले जिसके रहने वाले बड़े अत्याचारी हैं और अब तू किसी को अपनी ओर से हमारा संरक्षक बना कर खड़ा कर दे और

हमारे लिये अपनी ओर से किसी विशेष सहायक का भेज दे। (कु. 4:75)

जिन पर अत्याचार हो या जिन का दमन हो रहा हो वह मुस्लिम हों या गैर-मुस्लिम, कुरआन को मानने वालों का कर्तव्य है कि उनकी सहायता के लिये आगे बढ़ कर पदलितों को मुक्त कराएं।

3. संधि के उल्लंघन के समय (परिस्थिति-अनुसार लड़ने या न लड़न का अधिकार) :

किसी कौम या देश से यदि युद्ध व शान्ति संबंधी कोई संधि हो और वह उसका एकपक्षीय उल्लंघन करे या उसे तोड़ दे तो भविष्य में उस की ओर से ख़तरे के निवारण के लिये इस्लाम उस से युद्ध करने की अनुमति देता है परन्तु न्यायिक रूप से अपने अनुयायियों को यह निर्देश भी देता है कि वह चुप-चाप कोई कार्यवाई करने के बजाय अपनी ओर से भी संधि-विच्छेद की घोषणा करदें। कुरआन शरीफ का इस विषय में निर्देश है कि :

“ईश्वर और उसके दूत की ओर से उन मुशरिकों (ईश्वर के साझी ठहराने वालों) से संधि-विच्छेद का एलान है जिन से तुम्हारी संधि थी। ... सिवाय उन मुशरिकों के जिन से तुम्हारी संधि हुई और उन्होंने तुमसे अनुबंध का उल्लंघन न किया हो और न तुम्हारे विरुद्ध किसी की सहायता की हो, तो उनसे निश्चित समय तक समझौते की पाबन्धी करो। ईश्वर अवज्ञा से बचने वालों को प्रसन्न करता है”। (कु. 9:1, 4)

इस्लाम में युद्ध की इजाज़त या आदेश केवल इन्हीं तीन कारणों से है। किसी देश को जीतने, अपनी सत्ता स्थापित करने, सीमाएं बढ़ाने या इस्लामी शासन लागू करने के लिये शस्त्र उठाने की इजाज़त नहीं है।

धर्म-विस्तार के लिये बल-प्रयोग का निषेध :

ईश्वर ने मनुष्य को कर्मक्षेत्र में स्वतंत्रा दी है। उसे अच्छे बुरे को ग्रहण करने का अधिकार है। यह संसार उसके लिये परीक्षा स्थल है।

“हम ने उसका (इन्सान) मार्ग दर्शन किया (अब यह उसका निर्णय है कि) चाहे वह कृतज्ञ बने या अकृतज्ञ”। (कु. 76:3)

ईश्वरों के माध्यम से मार्ग दर्शन करने के बाद यदि ईश्वर किसी को ईमान लाने पर विवश करे तो इन्सान की स्वतन्त्रता भी अर्थहीन होगी और उस की परीक्षा भी।

“...यदि ईश्वर चाहता तो तुम सब को एक धर्म-समूह बना देता परन्तु (उस ने चाहा कि) जो (आदेश) उस ने तुम को दिया है, उस में तुम्हारी परीक्षा ले...” (कु. 5:48)

जब उस ने स्वयं मानव को स्वतन्त्रा दी तो इसका कोई औचित्य नहीं कि वह ईश्वरों या उसके अनुयायियों को यह अनुमति दे कि धर्म के विषय में किसी पर ज़ोर ज़बरदस्ती की जाए। आज्ञापालन के लिये बल के प्रयोग से तो इस्लाम का मूलाधार ही समाप्त हो जाता है। तभी तो उस ने कुरआन में यह आदेश दिये कि :

“और यदि तुम्हारा पालनहार (ज़बरदस्ती करना) चाहता तो जितने लोग पृथ्वी पर हैं सब ईमान ले ही आते तो क्या अब तुम लोगों पर ईमान वाले बनने के लिये बल-प्रयोग करोगे?” (कु. 10:99)

“तमु उपदेश किये जाओ तुम्हारा काम केवल उपदेश देना है। तुम उन पर दरोगा तो नहीं हो” (कु. 88:21,22)

“यह लोग जो कुछ (तुम्हारे विषय में) कहते हैं उसे हम खूब जानते हैं और तुम उन पर ज़बरदस्ती करने वाले नहीं हो। (तुम्हारा कार्य तो यह है कि) जो व्यक्ति हमारे प्रकोप से डरता है उसको कुरआन सुना-सुनाकर समझाते रहो” (कु. 50:45)

“अपने रब के मार्ग की ओर तत्वदर्शिता से और अच्छे उपदेश द्वारा आहन करो और उनसे सभ्यतापूर्वक ही तर्क करो” (कु. 16:125)

कुरआन ने यह बार बार स्पष्ट किया है कि ईश्वर ने इन्सान को इस धर्ती पर परीक्षा के लिये उतारा है। वह यहाँ केवल एक बार कर्म करने आया है। अगर ईश्वर की इच्छानुसार, उसके बताए हुए मार्ग पर चल कर जीवन व्यतीत करेगा तो परीक्षा में सफल होगा वरना मरने के बाद दण्ड भोगेगा। यदि किसी को बलपूर्वक इस्लाम कबूल कराया जाए तो इस्लाम का आधार ही समाप्त हो जाएगा। यदि बल का प्रयोग होगा तो परीक्षा बाकी नहीं रहेगी। परीक्षा तो तभी संभव है जब कर्म स्वेच्छा से हो। कुरआन तो अपने अनुयायियों से यहाँ तक कहता है कि प्रमाणों से समझाने के बाद भी जो इनकार करें उनसे अन्त में कह दो :

“...तुम्हारे लिये तुम्हारा धर्म मेरे लिये मेरा धर्म” (कु. 109:6)

इस्लाम अपने विवेकशील सिद्धान्तों या मुहब्बत के प्रचार के आधार पर फैलने वाला धर्म है। आज दुनिया के जिन देशों में मुसलमान बहुसंख्यक हैं वह या तो ग्रीष्म व कमज़ोर हैं या शक्तिशाली देशों से दबे हुए हैं परन्तु इस्लाम फैल रहा है। इस्लाम उन सभी देशों में भी फैल रहा है जहाँ मुसलमान अल्पसंख्या में हैं जिस में शक्तिशाली, परिपूर्ण और विकसित देश शामिल हैं। आज भी इस्लाम-विरोधियों के अत्यन्त प्रबल प्रचार तन्त्र के बावजूद विश्व में सबसे तेज़ी से फैलने वाला धर्म इस्लाम ही है।

यदि इस्लाम के फैलने में ज़ोर-ज़बरदस्ती का हाथ होने के मिथ्या प्रचार में कोई वास्तविकता होती तो 16वीं से 20वीं शताब्दी के मध्य तक के समय में इस्लाम का लोप होगया होता क्योंकि यह समय विश्व में (भारत के सिवाय) मुसलमानों के राजनीतिक, आर्थिक और शैक्षिक पतन का चरम युग था। भारत में औरंगज़ेब (निधन 1703) के बाद से 300 वर्षों में मुसलमानों की संख्या कम हुई होती। वास्तविकता यह है कि दोनों मामलों में इस्लाम तेज़ी से आगे बढ़ता रहा। यह भी विचारणीय है कि यदि इस्लाम के तलवार से फैलने में तथ्य होता तो स्पेन और भारत दोनों देशों में मुसलमान अल्पसंख्यक न होते। दोनों ही देशों में 800 वर्ष मुसलमान शासकों का राज्य रहा। भारत में इस्लाम औरंगज़ेब के बल से नहीं, ख्वाजा मुहम्मद निशानी अजमेरी और अन्य मुस्लिम सूफ़ियों के प्रेम प्रचार से फैला जिन से आज भी करोड़ों और मुस्लिम प्रेम करत हैं।

सशस्त्र जिहाद की घोषणा के नियम :

अगर किसी जगह किसी व्यक्ति या कुछ लोगों पर अत्याचार हो रहा हो तो इस्लाम उन्हें आत्मरक्षा में मुकाबला करने या ज़्यादती का बदला लेने का अधिकार देता है परन्तु साथ ही यह सीख देता है कि यदि वह क्षमा कर सकें तो बेहतर है। बदला भी बस ज़्यादती के स्तर का हो, उस से अधिक नहीं। ऐसा व्यक्ति या लोग आत्मरक्षा में लड़ सकते हैं, अस्त्र का उत्तर शस्त्र से दे सकते हैं परन्तु उनकी यह लड़ाई जिहाद नहीं होगी।

“यदि तुम बदला लो तो बस उतना ही जितना तुम्हें नुक़सान पहुँचाया गया हो और यदि धैर्य स काम ले सको तो यह धैर्य रखने वालों के लिये (ईश्वर की दृष्टि में) बेहतर है”। (कु. 16:126)

कुरआन शरीफ की उपरोक्त शिक्षाओं के अनुसार ईशदूत ह. मुहम्मद स. ने विभिन्न प्रतिकूल परिस्थितियों में जो आदर्श स्थापित किया उसकी रौशनी में मुस्लिम धर्म विद्वाना के भारी बहुमत की सम्मति है कि —

- जिहाद की घोषणा का अधिकार केवल इस्लामी राज्य को है।
- किसी व्यक्ति, गुट, जत्थे या समूह द्वारा युद्ध का एलान जिहाद नहीं होगा।
- इस्लामी राज्य के सिवाय किसी देश का युद्ध घोषित करना भी जिहाद नहीं होगा।

यदि रहे कि इस्लामी राज्य उस देश को नहीं कहते जहाँ मुस्लिम बहुसंख्या में हों अपितु वह राज्य जहाँ इस्लामी विधान व व्यवस्था लागू हो या कम से कम किसी राज्य का यह स्पष्ट दावा और एलान तो हो कि वहाँ इस्लामी नियमों के अनुसार ही शासन किया जाता है। यदि कहीं भी मुसलमानों पर अत्याचार या ज्यादती के नाम पर या अपना अधिकार प्राप्त करने के लिये या मुसलमानों की सहायता के लिए इस्लामी राज्य के सिवाय किसी गुट या देश की ओर से जिहाद का नारा दिया जा रहा हो तो उसे सशस्त्र संघर्ष, अथा युद्ध ही कह सकते हैं, जिहाद नहीं। वर्तमान समय में तो इस्लामी राज्य का दावा करने वाले किसी देश के जिहाद के एलान के मान्य होने से पहले परखना भी होगा कि जिन तीन परिस्थितियों में कुरआन युद्ध की बात करता है क्या वह एलान उनके अन्तर्गत है, और यह भी कि कथित इस्लामी राज्य किसी महाशक्ति के प्रभाव में उसके हितों को बढ़ावा देने की साजिश का शिकार तो नहीं बन रहा है?

छापा मार युद्ध :

कुछ मुस्लिम बुद्धिजीवी छापा मार जंग के पक्षदर होते हुए यह मानते हैं कि जिहाद की अवस्था में छापा मार युद्ध भी जंगी रणनीति का एक हिस्सा है। वे इसके लिये इस्लामी इतिहास की निम्न घटना से तर्क प्रस्तुत करते हैं।

ईशदूत स. ने अपने सत्संगियों सहित काबे की परिक्रमा के लिये मदीने से मक्का प्रस्थान किया। मार्ग में मक्के से 6 कि.मी. पहले 'हुदैबिया' नामक स्थान पर विश्राम के लिये पड़ाव किया। जब मक्का वासियों को इस की सूचना मिली तो उन्होंने संदेश भेजा कि वह मुसलमानों को मक्के में प्रवेश करने नहीं देंगे। मक्के के प्रतिनिधि हुदैबिया आए और बहुत बात-चीत के बाद मक्के वालों और मदीने के मुसलमानों के बीच एक संधि पर सहमति हुई जिसे इतिहास में 'सुलह हुदैबिया' के नाम से जाना जाता है। संधि के अनुसार मुसलमानों को उस वर्ष वहाँ से वापिस लौटना था और अगले वर्ष वे काबे की परिक्रमा के लिये मक्का आसकते थे। उस संधि में एक शर्त यह भी थी कि मक्के से यदि कोई ईस्लाम धर्म स्वीकार कर मदीना जाएगा तो उसे मक्के वालों के हवाले कर दिया जाएगा किन्तु यदि मदीने के किसी मुसलमान ने किसी कारण भाग कर मक्के में शरण ली तो उसे वापिस नहीं किया जाएगा। यह शर्त मुसलमानों को स्वीकार नहीं थी परन्तु शान्ति स्थापना के हित में ईशदूत स. ने इसे भी स्वीकार किया। अभी जुबानी ही तय हुआ था कि जन्नीरों और बेड़ियों की झांकार सुनाई दी और मक्का वासियों के एक कैदी लड़खड़ाते हुए वहाँ पहुँच कर गिर गए। इनका नाम अबू जिन्दल था जो खून से तर थे। इस्लाम स्वीकार करने के अपराध में वह मक्के में बन्दी थे और किसी प्रकार बेड़ियाँ तोड़ कर उस समय वहाँ भाग कर आपहुँचे थे। मक्के के प्रतिनिधि ने अपना कैदी वापिस माँगा।

मुसलमानों ने विरोध किया कि अभी संधि पर हस्ताक्षर नहीं हुए थे। अबूजिन्दल बिलक-बिलक कर बिन्नी कर रहे थे कि अगर उन्हें लौटाया गया तो वह जीवित न बचेंगे परन्तु शर्तें तय हो चुकीं थीं, भले ही अभी हस्ताक्षर न हुए हों। ईशदूत तय करने के बाद मुकर नहीं सकते थे। अबूजिन्दल को लागों की सिस्कियों के बीच पथरीली ज़मीन पर घसीटते हुए ले जाया गया।

अबूजिन्दल मक्का पहुँच कर किसी प्रकार फिर भागने में सफल होगए। वह जानते थे कि मदीने में शरण नहीं मिलेगी अतः मक्के से शाम (Syria) देश को जाने वाले मार्ग पर एक धाटी में उन्होंने डेरा बना लिया। कुछ ही समय में मक्के से भागे हुए कुछ और नव-मुस्लिम भी उनसे आ मिले। इन लागों ने मक्के के व्यवसायिक काफिलों पर छापे मारना और उन्हें लूटना शुरू कर दिया। अधिक समय तक मक्का वासी अपनी आर्थिक असुरक्षा सहन न कर सके और मदीने में ईशदूत के पास प्रार्थना भेजी कि संधि की शर्तों में से बन्दियों की वापिसी वाली शर्त निरस्त कर दी जाय और अबूजिन्दल व अन्य नव-मुस्लिमों को मदीने बुला लिया जाए।

उपरोक्त मुस्लिम विद्वान कहते हैं कि अबूजिन्दल जब शत्रुओं के काफिलों पर छापे मारते थे तो ईशदूत स. ने उन्हें मना करने का आदेश नहीं भेजा। यह विचित्र तर्क है। उन्होंने अबूजिन्दल के उक्त कदम की सराहना भी तो नहीं की और न उन्हें उकसाया। अबूजिन्दल उस समय संधि के अनुसार इस्लामी स्टेट के अधीन नहीं थे। वस्तुस्थिति यह थी कि वह मक्का अनुशासन के बागी नागरिक थे जिन्हें कोई आदेश देने का वैधानिक अधिकार ईशदूत स. को नहीं था। जब उन्हें इस्लामी राज्य की नागरिकता मिल गई उसके बाद न उन्होंने स्वयं कोई छापा मार कार्यवाई की और न उन्हें ईशदूत ने ऐसा करने को कहा।

कुछ बुख्खिजीवियों के तर्क की बात चली तो इस प्रसंग में उनकी इस ग़लतफहमी का निवारण भी ज़रूरी है कि जब इस्लामी राज्य स्थापित हो जाए तो दूसरे गैर इस्लामी राज्यों को हानि पहुँचाने या उन्हें कमज़ोर करने के लिये छापामार युद्ध प्रणाली को अपनाना चाहिये क्योंकि अंतिम ईशदूत स. न स्वयं भी कुछ छापा मार दस्ते मक्के वालों के काफिलों को लूटने और उन पर हमले करने के लिये भेजे थे। अल्लाह के पैगम्बर और लूट-मार! जब उनकी जान लेने के लिये मक्के में उनके घर का घेराओ हुआ, उस समय भी उन्होंने यह ज़रूरी समझा कि निकलने से पहले ह. अली को हिसाब समझा कर दुश्मनों की वह अमानतें सौंप दें जो उनके पास थीं। ऐसा व्यक्ति बिना युद्ध की घोषणा के धन लूटने के उद्येश्य से किसी पर बेख़बरी में हमला करेगा? कोई समानता है इन दोनों चरित्रों और प्रकरणों में? कुछ विद्वानों की इसी प्रकार की ग़लतफहमियों को आतंकवादी अपना वैचारिक हथियार बनाते और इस्लाम को बदनाम करते हैं। इस्लाम ने युद्ध में भी सदा नैतिकता के ऐसे सर्वोच्च मापदण्ड सुनिश्चित किये जिन की मिसाल संयुक्त राष्ट्र के घोषणापत्र (Charter) में भी नहीं मिलती। क्षमा करें, इस्लामी जिहाद और चाणक्य की रणनीति में नैतिकता का बहुत अन्तर है। जिहाद मात्र युद्ध नहीं है। उक्त विद्वान जिन घटनाओं की बात करते हैं उनकी वास्तविकता निम्न है।

इस्लामी इतिहास के पहले युद्ध 'ज़ंगे बदर' से पहले 8 अवसरों पर छोटे-बड़े बहु-उद्देशीय सशस्त्र दस्ते अरब की विभिन्न जातियों से शान्ति संधियाँ करने, मक्के वालों की गतिविधियों पर नज़र रखने और मक्का वालों पर मनोवैज्ञानिक दबाव बनाने के लिये मदीने से निकाले गए। इन में से 4 अवसरों पर स्वयं ईशदूत स. दस्तों की अगुवाई कर रहे थे और शेष चार में वह सम्मिलित न थे। क्या वह इतने असफल सेनाध्यक्ष थे कि 8 में 7 अवसरों पर उनके छापा

मार दस्ते न तो किसी को मार सके और न धन लूट कर ला सके? केवल एक बार 'नख़ला' नामक स्थान पर जो दस्ता भेजा गया उस ने एक शत्रु को मार गिराया और दो बन्दी बना कर लाए। तब क्या उस एकमात्र सफल अभियान पर दस्ते के कमान्डर की पीठ थपथपाई गई? नहीं, बल्कि उन पर ईशदूत स. क्रोधित हुए। यदि उद्योगश्चय हमला करना होता तो उस दस्ते को उस महीने में भेजा ही न जाता जिस में सारे अरब वासी युद्ध वर्जित मानते थे। उस महीने ही में युद्ध निषिद्ध होने की बात न थी बल्कि उपरोक्त आठों अभियानों तक अल्लाह की ओर से ईशदूत स. को आक्रमण तो दरकिनार, किसी जवाबी हमले की अनुमति भी नहीं मिली थी। इस हमले में मरने वाले शत्रु के परिवार जनों को मुआविज़ा दिया गया और बन्दियों को छोड़ दिया गया।

यह हैं वे घटनाएं जिन पर छापा मार या गोरीला प्रणाली के औचित्य का आधार रखा जाता है। अतः किसी गुट का छापामार प्रणाली द्वारा जंग करना और उसे इस्लामी जिहाद समझना ग़लत है।

इस्लाम में युद्ध की आचार संहिता :

कुरआन शरीफ में वर्णित शार्तों के अनुसार यदि युद्ध की अनुमति हो या युद्ध अनिवार्य हो जाए, दोनों परिस्थितियों में कुरआन और हदीस (ईशदूत स. के कथन) ने कुछ नैतिक नियम भी निश्चित किये हैं जिन का पालन करना इस्लामी सैनिकों के लिये अनवार्य है।

1. युद्ध के समय आचार संहिता का उल्लंघन न हो। यदि अत्याचारी उत्पात से रुकने का आश्वासन दे तो युद्ध तुरन्त रोक देने का आदेश है।

"जो लोग तुम से युद्ध करते हैं उनसे ईशमार्ग में युद्ध करो मगर (युद्ध में) सीमाओं (आचार संहिता) का उल्लंघन न करो। क्योंकि ईश्वर सीमा उल्लंघन करने वालों को पसन्द नहीं करता। इन (अत्याचारियों को) जहां पाओ क़त्ल करो और जहां से उन्होंने तुम्हें निकाला है वहां से उन्हें निकाल बाहर करो क्योंकि यह उत्पात हत्या से अधिक बुरा है... परन्तु यदि वे (उत्पात फैलाने और दीन के विषय में तुम पर ज़बरदस्ती करने से) रुक जाएं तो अल्लाह ग़लतियों को ढकने वाला दयालू है। तुम उनसे युद्ध किये जाओ यहाँ तक कि उत्पात शेष न रहे और दीन केवल अल्लाह के लिये हो। परन्तु अगर वे (उत्पात करने और दीन के विषय में तुम पर ज़बरदस्ती करने से) रुकने का आश्वासन दें तो यह जान तो कि दण्ड अत्याचारियों के सिवा और किसी के लिये नहीं है। (यानी तुम भी उन्हें दण्ड देने या मारने से रुक जाओ)"। (कु. 2:190 त्र 193)

2. संधि को युद्ध पर प्राथमिकता है। यदि युद्ध के बीच भी दुश्मन सेना की ओर से संधि का प्रस्ताव आए और उनसे पूर्व में कोई ऐसी संधि न हुई हो जिस का उन्होंने उल्लंघन किया हो) तो चाहे मुस्लिम सेना का पलड़ा भारी हो तब भी संधि प्रस्ताव को स्वीकार किया जाए।

"यदि वह संधि की ओर अग्रसर हों तो तुम भी संधि को प्राथमिकता दो और ईश्वर पर विश्वास करो क्योंकि वह सब की सुनता और जानता है और फिर यदि उनका आशय तुमसे विश्वासघात करने का भी होगा तो (तुम इस संभावना पर संधि से न हटो) ईश्वर तुम्हारे लिये पर्याप्त है..."। (कु. 8:61,62)

3. युद्ध के बीच यदि कोई ऐसा दुश्मन सैनिक शरण माँगे जो उसी समय गिरफ्तार या हताहत हाने वाला न हो तो उसे शरण देने के बाद इस्लाम की शिक्षाएं ठीक से समझा कर उसे वहाँ पहुँचा दो जहाँ वह स्वयं को सुरक्षित समझे। फिर वह स्वेच्छा से चाहे तुम्हारे साथ आए चाहे शत्रुओं में जा मिले।

“और यदि (युद्ध के बातारण में तुम से संधि तोड़ने वाले) मुशरिकों में से कोई व्यक्ति तुम्हारी शरण की प्रार्थना करे तो उसको शरण दो यहाँ तक कि वह ईश्वर का कलाम सुन समझ ले फिर उसको उसके शान्ति के स्थान पर वापस पहुँचा दो। ऐसा इस कारण से है कि यह लोग (इस्लाम की) वास्तविकता से अनभिज्ञ हैं”। (कु. 9:6)

कुरआन शरीफ ने युद्धावस्था में भी सीमाओं का उल्लंघन न करने का जो आदेश दिया था उसको स्पष्ट करते हुए ईशदूत ह. मुहम्मद स. ने निम्न नियमों को अपने अनुयायियों के लिये लागू किया।

1. युद्ध में महिलाओं, बच्चों, वृद्धों और मज़दूरों की हत्या न की जाए। (यहाँ यह बात विचारनीय है कि महिलाएं, बच्चे, बूढ़े या मज़दूर युद्ध स्थल पर क्या कर रहे थे? वे चाहे सैनिक न भी हों, सेना की किसी न किसी रूप में सहायता के लिये हीं, तो आए होंगे फिर भी उन पर शस्त्र उठाने को मना किया।)
2. कोई फलदार वृक्ष नहीं काटा जाए। फसल नहीं उजाड़ी जाए।
3. जो सैनिक युद्ध स्थल पर युद्ध में सम्मिलित हों केवल उनसे युद्ध किया जाए। अन्य लोग जो अपने घरों में हैं और युद्ध के लिये नहीं निकले उनसे युद्ध में विजय के उपरान्त दुर्व्यवहार नहीं किया जाए।

4. शत्रु के धार्मिक स्थलों को कोई हानि नहीं पहुँचाई जाए।

ऐसी आचार सहिता की मिसाल इस्लाम के अतिरिक्त किसी धर्म में नहीं मिलती और न आज भी कहीं युद्ध में इतने उदार नियमों का पालन किया जाता है। इसके विपरीत व्यवहार में माना तो यह जाता है कि युद्ध में सब जायज़ है।

इन्हीं इस्लामी आदर्शों के अनुसूप जब मक्का वासियों ने ‘हुदैबिया’ संधि का उल्लंघन किया तो इस्लामी सेना ने मक्के पर चढ़ाई की। जब इस्लामी सैनिक विजेता के रूप में मक्के में प्रवेष कर रहे थे तो सेना के एक ध्वजारोही ने यह नारा लगाया कि ‘आज बदला लेने का दिन आगया है’। ईशदूत स. का शुभ मुख्यमण्डल क्रोध से तमतमा उठा। आदेश दिया कि नारा लगाने वाले से ध्वज वापस ले लो और यह नारा लगाओ कि ‘आज क्षमा और दया का दिन है’। मक्का वासियों ने जिन्हें जान से मारना चाहा, जिन के अनुयायियों को अमानवीय पीड़ाएं दे कर खाली हाथ वतन छोड़ने पर मजबूर किया गया, जिन पर देश त्यागने के बाद भी आक्रमण किये गए वह अपनी सेना के साथ मक्के में विजेता के रूप में मात्र 8 वर्ष बाद ऐसी दशा में प्रवेष कर रहे थे कि सीना फुलाने के बजाय विनम्रता और ईश्वर को धन्यवाद के भाव से सिर इतना झुका हुआ था कि ऊँट की पीठ से जा लगा था। क्योंकि मक्का वाले आज मुकाबिले की क्षमता न रखते हुए लड़ाई के लिये नहीं निकले थे अतः सार्वजनिक माफी का एलान हुआ। उनके उन जाने माने सेनापतियों को बन्दी भी नहीं बनाया गया जिन्होंने बहुत क्षति पहुँचाई थी। उदारता की इस से बड़ी मिसाल इतिहास में नहीं मिलती कि अपने घर-बार और धन जो उन्होंने मक्क से निकलते समय पीछे छोड़े थे, उन्हें भी वापिस नहीं लिया। मक्के में शान्ति स्थापना के बाद विजेता मदीने लौट आए।

इस्लामी राज्य के लिये देश के विभाजन की माँग :

धर्म तोड़ता नहीं, धर्म जोड़ता है। किसी देश में यदि मुसलमान अल्पसंख्यक हों तो शान्तिपूर्ण ढंग से अलग मुस्लिम राज्य की स्थापना की माँग में सैद्धान्तिक रूप से कोई आपत्ति न होती अगर यह माँग व्यवहारिक होती। इतिहास में आज तक किसी अल्पसंख्यक समुदाय के शासन ने भी बहुसंख्यकों के अलग राज के लिये विभाजन का प्रस्ताव तब तक स्वीकार नहीं किया जब तक उनके लिये इसके बिना शासन करना असंभव न हो गया हो। बहुसंख्यकों द्वारा अल्पसंख्यकों की ऐसी किसी शान्तिपूर्ण माँग को स्वीकार करने का तो विषय ही हास्यास्पद है। स्पष्ट है कि अल्पसंख्यक यदि विभाजन द्वारा अलग देश बनाना चाहें तो इसके लिये उन्हें बहुत बड़ी संख्या में प्राणों की आहुति दनी होगी या सशस्त्र संघर्ष करना होगा। इस्लाम इन दोनों की इजाजत नहीं देता। जहाँ अपने धर्म पर अमल करने की पूरी आज़ादी हो उसकी तो बात ही न करें, जहाँ अपने धर्मानुसार आचरण करने पर ऐसी पाबन्दी हो कि केवल एक ईश्वर की मान्यता रखने के दोष में अत्याचार के पहाड़ तोड़े जाएं और जान, माल, इज्ज़त आबरू बर्बाद होने लगें, कुरआन वहाँ शस्त्र उठाने के स्थान पर अपने अनुयायियों को वहाँ से (हिजरत) पलायन करने का आदेश देता है।

“जिन पर उनके दीन के कारण अत्याचार किये गए और उसके बाद उन्होंने अल्लाह के दीन पर अमल करने के लिये हिजरत की (वतन छोड़ा), उनको संसार ही में उस से अच्छा स्थान अवश्य मिलेगा और यदि वे समझना चाहें तो उनके लिये परलोक का सुख तो बहुत बड़ा है।

(भावार्थ कु. 16:41)

जिन अल्पसंख्यकों पर उनके धर्म के कारण अत्याचार हुए और उन्होंने अल्लाह के उपरोक्त निदश के बावजूद वहीं रहते हुए भय से अपने दीन में कुछ समझौता कर लिया, उन्होंने कुरआन के अनुसार स्वयं अपने ऊपर अत्याचार किया। उनका परलोक में बुरा ठिकाना होगा।

“निश्चय ही जो लोग अपने ऊपर अत्याचार करते रहे उनके प्राण लेते समय फरिश्ते कहेंगे कि तुम किस चक्कर में थे? वे जब उत्तर देंगे कि हम पृथ्वी पर बेबस थे तो फरिश्ते कहेंगे, ‘क्या अल्लाह की ज़मीन बहुत बड़ी न थी कि तुम वतन छोड़ कर कहीं और जा बसते?’ ऐसे लोगों का ठिकाना नरक होगा जो बहुत बुरा ठिकाना है।” (कु. 4:97)

“और जो कोई अल्लाह के मार्ग में हिजरत करगा (वतन छोड़ेगा) वह पृथ्वी पर अच्छी शरण और बहुत साधन पाएगा और यदि अल्लाह और उसके दूत के मार्ग में निकलने वाले की इसी बीच मृत्यु हो गई तो उसका पुण्य पूरा हो चुका और अल्लाह ग़लितों को ढकने वाला, कृपावान है।” (कु. 4:100)

जो लोग अपने ऊपर अत्याचार के बावजूद हिजरत न करें, क्या अन्य देशों के मुसलमान उनकी सहायता कर सकते हैं? कुरआन का निर्देश निम्न है :

“...और जिन ईमान वालों ने (अत्याचार के बावजूद) हिजरत न की (वतन न छोड़ा), जब तक वे हिजरत (पलायन) न करें तुम पर उनकी सहायता की कोई ज़िम्मेदारी नहीं है। यदि वे धर्म के संबंध में सहायता चाहें तो ऐसी सहायता करना तुम्हारा कर्तव्य है परन्तु यदि उनके देश से (हस्तक्षेप न करने की) तुम्हारे बीच कोई संधि हो

तो संधि की पाबन्दी ज़रूरी है। (याद रखना) तुम्हारे सब कर्मों को अल्लाह देख रहा है”। (कु. 8:72)

प्रतिकूल परिस्थितियों में हिजरत करने (वतन छोड़ने) के बाद ही (यदि सशस्त्र जिहाद की सब शर्तें पूरी होती हों तब) सशस्त्र जिहाद होगा। अल्पसंख्यक मुसलमानों के अपने वतन में रहते हुए किसी सशस्त्र जिहाद की इस्लाम इजाज़त नहीं देता।

“फिर निस्संदेह जिन लोगों ने उत्पीड़न के बाद हिजरत की (वतन छोड़ा), फिर जिहाद किया, फिर धैर्य रखा तो उनके लिये तुम्हारा रब ग़लियों को ढकने वाला, कृपावान है”। (कु. 16:110)

मक्के में 13 वर्षों तक ईशदूत स. और उनके अनुयायियों ने अत्याचार सहे। किसी सशस्त्र संघर्ष की कोई योजना नहीं बनाई। जिन सहाबा (ईशदूत स. के सत्रसंगियों) का धैर्य का बन्धन टूटने लगता था, उन्हें समझाते व ढारस बन्धाते रहे। इस बीच अत्याचारियों ने जब उनका निश्चय अड़िग पाया तो कई बार समझौते के प्रस्ताव भी लाए। उन्होंने प्रस्ताव रखा कि बारी बारी एक दिन दोनों पक्ष तुम्हारे खुदा की बन्दिगी करे और एक दिन तुम हमारे देवताओं को भी पूजो। वे यह प्रस्ताव भी लाए कि तुम केवल एक ईश्वर की उपासना का प्रचार बन्द कर दो और यदि चाहो तो हम तुम्हें मुँह मागा धन दें और तुम्हें अपना सरदार तक बना लें। ऐसे प्रस्ताव लाने वाले यह तो बड़ी खुशी से मान लेते कि मुसलमान अपना एक मुहल्ला अलग कर लें और केवल वहीं अपने खुदा की इबादत करें, हमारे क्षेत्र में प्रचार बन्द कर दें। ऐसी कोई माँग ईशदूत स. ने नहीं रखी और न उनकी किसी शर्त को स्वीकार किया। जब दुश्मनों ने तय करके उनकी जान लेने के इरादे से घर

का घेराव किया और ईश्वर की ओर से अनुमति आ गई तो वतन छोड़ दिया और मदीने हिजरत (पलायन) कर गए।

अगर मुसलमान किसी देश में अल्पसंख्यक होते हुए उत्पीड़न के शिकार हैं तो वहाँ से हिजरत कर जाएं। अल्लाह के बादे के अनुसार उन्हें दुनिया में भी बेहतर ठिकाना मिलेगा और अधिकृत (परलोक) में भी। और यदि वहाँ उन्हें अपने धर्म पर अमल करने की ही नहीं प्रचार की भी स्वतन्त्रता हो तो वे मुहब्बत फैलाएं और इस्लाम का आह्वान इस प्रकार करें जैसे कुरआन का निर्देश है।

“अपने रब के मार्ग की ओर तत्त्वदर्शिता से और अच्छे उपदेश द्वारा आह्वान करो और उनसे सभ्यतापूर्वक ही तर्क करो” (कु. 16:125)

जिहाद के सशस्त्र भाग का प्रयोग तो कड़ी शर्तों के साथ विशेष परिस्थितियों ही में है। असली जिहाद का माध्यम शस्त्र नहीं कुरआन की शिक्षाओं का पालन और प्रचार है। इसे बड़ा जिहाद बताया गया है।

‘‘तो तुम न मानने वालों का अनुकरण न करो और इस (कुरआन) के द्वारा बड़ा जिहाद करो।’’ (कु. 25:52)

इस मूल और बड़े जिहाद की पुष्टि का एक उदाहरण ईशदूत स. की जुबानी तब मिला जब वे रुमियों की ओर से आक्रमण की तैयारियों की सूचना मिलने पर अपनी सेना लेकर उनके राज्य की सीमा तक पहुँच गए। 20 दिन तक पड़ाव डाले रखने के बाद भी जब वे मुक़ाबिले पर नहीं आए तो बिना आक्रमण किये वापिसी का आदेश किया। मदीने से सशस्त्र जिहाद के लिये निकले थे। घर वापिसी के सफर में फरमाया, “अब हम छोटे जिहाद से बड़े जिहाद की ओर जा रहे हैं”।

कोई संदेह शब्दे न रहना चाहिये कि अगर कोई गुट मुसलमान होने के कारण या इस्लाम के नाम पर किसी देश या उसके किसी क्षेत्र की मांग को लेकर सशस्त्र संघर्ष करता है तो वह सीमाओं का उल्लंघन करने वाला है। जिहादी नहीं, फ़सादी है।

इस्लाम और देश प्रेम :

कुरआन ईश्वर की अन्तिम वाणी है। कुरआन के अनुसार ईश्वर और उस की सृष्टि में से किसी एक के भी अधिकारों का हनन करने वाला ज़ालिम होता है। इस्लाम ने शिक्षा दी कि सभी इन्सानों के मानवाधिकार तो समान हैं परन्तु जो हमारे जितना निकट है और जिस के हम पर जितने ज़्यादा उपकार हैं, उसके प्रति उतनी ही हमारी ज़िम्मेदारियाँ अधिक हैं। मेरी जननी के प्रति मेरी ज़िम्मेदारियाँ अन्य महिलाओं से अधिक हैं। हमारे पड़ोसी का हम पर दूसरों से ज़्यादा अधिकार है। हमारे देश का हम पर अन्य देशों से ज़्यादा हक है और उसके प्रति हमारी ज़िम्मेदारियाँ अन्य देशों से अधिक हैं। जिसके हम पर उपकार जितने अधिक हैं, अधिकार जितने ज़्यादा हैं, स्वभाकि ही उसके प्रति हमारा प्रेम भी उतना ही ज़्यादा होना चाहिये। अन्तिम ईशदूत ह. मुहम्मद स. की वतन से मुहब्बत की मिसाल हमारे सामने है।

13 साल सत्य प्रचार के जुर्म में हर प्रकार की यातना सहन करते रहे। मार्ग में कॉटे बिछाए गए। सिर पर छत से कूड़ा फेंका गया परन्तु धृणा के स्थान पर जब कूड़ा फैकने वाली बुढ़िया बीमार हुई तो उसकी ख़ैरियत पूछने पहुँचे। उन पर और उनके अनुयायियों पर अत्याचार के पहाड़ तोड़े गए। ठाई वर्ष तक उनकी और उनके परिवार वालों की ऐसी आर्थिक नाकाबन्दी हुई कि वृक्षों की छालें खा-खा कर गुज़ारा हुआ। उनके साथियों को अरब की जलती रेत

पर नगे शरीर लिटा कर गले में रस्सी डाल कर खींचा जाता, उन्हे नंगी पीठ अंगारों पर लिटा कर सीने पर भारी पथर रख दिये जाते, यहाँ तक कि शरीर की चर्बी से वह अंगारे बुझते उन पर व उनके सत्संगियों पर ऐसे अत्याचार 13 साल तक होते रहे। ईश्वर के दूत सहन करते रहे और अत्याचार करने वालों के कल्पण की दुआ करते रहे परन्तु अपने वतन को त्याग कर नहीं गए। अन्त में जब सहवासी शत्रुओं ने उहें जान से मारने का फैसला कर लिया तो ईश्वर की आज्ञा आजाने के बाद दुखी मन से अपनी मात्र भूमि को छोड़ कर निकलना पड़ा। वतन को अलविदा कहते समय मक्के की एक पहाड़ी पर से अपनी मात्र भूमि को संबोधित करते हुए बड़े दुख से कहा कि यदि मेरे वतन वालों ने मुझे निकाला न होता तो मैं तुझे छोड़ कर नहीं जाता। यह थी ईशदूत की वतन से मुहब्बत।

ह. मुहम्मद सं से प्रेम करने वाले देश प्रेमी कैसे न होंगे? देश भी कौन सा देश। समस्त विश्व के मुसलमानों की पुण्य भूमि। जहाँ से ईशदूत स. को स्वर्ग की सुगन्ध आती थी और जहाँ इस्लाम के पहले ईशदूत ह. आदम अ. ने जन्म लिया अर्थात जो इस्लाम की जन्म भूमि है। हमें गर्व है कि वह पुण्य भूमि भारत है।

यह है इस्लाम में देश प्रेम का महत्व और विशेषकर भारत देश के प्रति दृष्टिकोण।

कुछ अन्य धर्मों की युद्ध संबंधी शिक्षाएं :

ईसाई धर्म :

हज़ारत ईसा (यीशु) मसीह (उन पर शान्ति हो) ने शिक्षा दी कि यदि कोई तुम पर अत्याचार करे तो संयम से काम लो और यदि कोई तुम्हारे एक गाल पर तमाचा मारे तो दूसरा गाल उस की ओर कर दो।

“तुम ने सुना है कि कहा गया था, आँख के बदले आँख और दाँत के बदले दाँत। किन्तु मैं तुम से कहता हूँ दुष्ट का विरोध मत करो वरन् जो तुम्हारे दाहिने गाल पर थप्पड़ मारे, उसक आग दूसरा भी फेर दो”। (मत्ती 5:38, 39)

ह. ईसा और उनके अनुयायी यरोशलेम में अल्पसंख्या में थे। उस परिस्थिति में उनकी उपरोक्त शिक्षा कुरआन की शिक्षा से ज्यादा भिन्न नहीं है। परन्तु जब किसी पर आक्रमण हो या किसी देश में पद्धलित सहायता की गुहार लगा रहे हों तो इस संबंध में कोई निर्देश ईसाई मत में नहीं है और उपरोक्त शिक्षा व्यवहारिक नहीं है। युद्ध की परिस्थिति में ईसाई बहुसंख्यक देश इस आदेश की अवहेलना के लिये सदा ही बाध्य रहे हैं।

सनातन धर्म :

सनातन धर्म में युद्ध संबंधी स्पष्ट निर्देश गीता और वेदों में हैं। यहाँ हमें कुरआन और हडीस के समान युद्ध की कोई आचार संहिता नहीं मिलती। इन निर्देशों को मानव समाज के प्रारंभिक काल की परिस्थितियों के परिपेक्ष में देखना चाहिये वरना बहुत भ्रान्तियाँ उत्पन्न हो सकती हैं।

गीता में युद्ध का निर्देश :

गीता का धर्मयुद्ध (जिहाद) अधिकार प्राप्ति के लिये है।

कुरुक्षेत्र में एक ओर पाण्डव हैं और दूसरी ओर उनके सगे संबंधी हैं परन्तु परिस्थिति के कारण आज उनके शत्रु हैं। अर्जुन युद्ध नहीं करना चाहते। युद्ध अधिकारों का है परन्तु अजुन अपने अधिकार त्यागने पर अग्रसर हैं और युद्ध से हटना चाहते हैं। वह अपने ही भाईयों पर बाण नहीं चला सकते। उनका हृदय कांपता है, उनके हाथ उनका साथ नहीं देते, उनके हाथों में धनुष उठाने का बल नहीं, परन्तु श्री कृष्ण उन्हें समझाते हैं और उन्हें यह उपदेश देते हैं कि इस समय युद्ध करना ही उनका धर्मयुद्ध है और युद्ध में किसी भी प्राणी के लिये उन्हें शोक नहीं करना चाहिये।

अर्जुन श्री कृष्ण से कहते हैं —

“मेरे हाथ से गाण्डीव धनुष गिर रहा है और त्वचा जल रही है। मेरा मन ब्रह्मित सा हो रहा है तथा मैं खड़ा रहने में भी असमर्थ हूँ और हे केशव मैं शकुनों को भी विपरीत ही देख रहा हूँ। युद्ध में अपने स्वजनों को मार कर कोई कल्याण भी नहीं देखता हूँ। हे कृष्ण, मैं न विजय चाहता हूँ और न राज्य तथा न सुखों को ही। हे गोविन्द, हमें ऐसे राज्य से अथवा भोगों से और जीने से भी क्या लाभ है? क्योंकि वे सब लोग, जिनके लिए राज्य, भोग और सुख की इच्छा है, धन और जीवन की आशा त्यागकर युद्ध के लिए खड़े हैं। हे मधुसूदन कृष्ण, गुरुजन, ताऊओं, चाचाओं, पुत्रों, पितामहों, मामाओं, श्वसुरों, पोतों,

सालों तथा अन्य सम्बन्धियों को, मुझपर प्रहार करने पर भी, मैं मारना नहीं चाहता. तीनों लोक के राज्य के लिए भी मैं इन्हें मारना नहीं चाहता, फिर पृथ्वी के राज्य की तो बात ही क्या है? (गीता 1:30 से 35)

श्री कृष्ण ने उत्तर दिया —

"अर्जुन, इस विषम अवसर पर तुम्हें यह कायरता कैसे प्राप्त हुई? यह श्रेष्ठ मनुष्यों के आचरण के विपरीत है तथा यह न तो स्वर्ग प्राप्ति का साधन है और न कीर्ति देने वाला ही है. इसलिए हे अर्जुन, तुम कायर मत बनो. यह तुम्हें शोभा नहीं देता. हे शत्रुओं को मारने वाले अर्जुन, तुम अपने मन की इस दुर्बलता को त्यागकर युद्ध करो". (गीता 2:2, 3) "हे अर्जुन, सबके शरीर में रहने वाला यह आत्मा सदा अवध्य है, इसलिए किसी भी प्राणी के लिए तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए". (गीता 2:30)

"और अपने स्वधर्म की दृष्टि से भी तुम्हें अपने कर्तव्य से विचलित नहीं होना चाहिए, क्योंकि क्षत्रिय के लिए धर्मयुद्ध से बढ़कर दूसरा कोई कल्याणकारी कर्म नहीं है. और यदि तुम इस धर्मयुद्ध को नहीं करोगे, तब अपने स्वधर्म और कीर्ति को खोकर पाप को प्राप्त होगे". (गी. 2:31, 33)

"हे पृथानन्दन, अपने आप प्राप्त हुआ युद्ध स्वर्ग के खुले हुए द्वार जैसा है, जो सौभाग्यशाली क्षत्रियों को ही प्राप्त होता है. युद्ध में मरकर तुम स्वर्ग

जाओगे या विजयी होकर पृथ्वी का राज्य भोगोगे; इसलिए हे कौन्तेय, तुम युद्ध के लिए निश्चय करके खड़े हो जाओ". (गी. 2:32, 37)

वेद में युद्ध के निर्देश :

धर्मयुद्ध (जिहाद) में धन जीतने या शत्रुओं (स्वामी दयानन्द के अनुसार 'वेद निन्दकों') के संहार संबंधी कुछ वेद मंत्र निम्न में उद्धरित हैं।

"शत्रु लोग निहत्ते होजाएं, उनके अंगा को हम शिथिल करते हैं। फिर हे इन्द्र उनके सब धनों को सैकड़ों प्रकार से हम बाँट लें"। (अथर्ववेद 6:66:3)

"हे इन्द्र... शत्रुओं में डर उत्पन्न करिये। वे हार कर भाग जाएं और उनका गाएं आदि धन हमें मिल जाए"। (अथर्ववेद 6:67:3)

"तू (वेद निन्दक को)* काट डाल, चीर डाल, फाड डाल, जंला दे, फूंक दे, भस्म कर दे"। (अथर्ववेद 12:5:62)

"उस (वेद विरोधी)[†] के लोमों को काट डाल, उसकी खाल उतार ले, उसके मांस के टुकड़ों को बोटी-बोटी कर दे, उसकी नसों को ऐंठ दे। उसकी हड्डियां मसल डाल, उसकी मींग निकाल दे। उसके सब अंगों को ढीला और जोड़ों को ढीला कर दे"। (अथर्ववेद 12:5:68 से 71)

* ब्रैकेट (कोष्ठक) के अन्दर के शब्द वेद के आर्य समाजी भाष्य के अनुसार हैं।

[†] ब्रैकेट (कोष्ठक) के अन्दर के शब्द वेद के आर्य समाजी भाष्य के अनुसार हैं।

युद्ध संबंधी आदेशों का अप्रासंगिक दुरोपयोग :

आन्तियाँ फैलाने वालों की बेर्इमानी :

इस्लाम में युद्ध केवल शान्ति स्थापना के लिये है जिसके लिये इतनी कड़ी शर्तें और कठोर आचार संहिता है जिसकी मिसाल किसी अन्य धर्म ग्रन्थ में नहीं मिलती। कुछ लोग और कुछ संगठन कुरआन की युद्ध संबंधी आयतों को प्रसंग से काट कर और उनमें साथ ही स्मरण कराए गए नैतिक निर्देशों को छिपा कर अधूरे उद्धरण प्रस्तुत करते हैं। उदाहरण के लिये निम्न कथित आदेश पर नज़र डालें जो तथाकथित आपत्तिजनक आयत सूची में लगभग अवश्य ही होता है।

“इनको जहाँ पाओ कल्प करो तुम उनसे युद्ध किये जाओ यहाँ तक कि दीन केवल अल्लाह के लिये हो”। (कु. 2:191,193)

अब प्रसंग के साथ असली आयतें जिनमें उपरोक्त शब्द भी हैं।

“जो लोग तुम से युद्ध करते हैं उनसे ईशमार्ग में युद्ध करो मगर (युद्ध में भी) सीमाओं का उल्लंघन न करो। क्योंकि ईश्वर सीमा-उल्लंघन करने वालों को पसन्द नहीं करता। (युद्ध क्षेत्र में) इन (अत्याचारियों) को जहाँ पाओ कल्प करा और जहाँ से उन्होंने तुम्हें निकाला है वहाँ से उन्हें निकाल बाहर करो क्योंकि यह उत्पात हत्या से अधिक बुरा है... परन्तु यदि वे (उत्पात फैलाने और दीन के विषय में तुम पर ज़बरदस्ती करने से) रुक जाएं तो अल्लाह गुलतियों को ढकने वाला दयालू है। तुम उनसे युद्ध किये जाओ यहाँ तक कि उत्पात शेष न रहे और दीन केवल अल्लाह के लिये हो। परन्तु अगर वे (उत्पात करने और दीन के विषय में तुम पर ज़बरदस्ती करने से) रुकने का आश्वासन दें तो

यह जान लो कि दण्ड अत्याचारियों के सिवा और किसी के लिये नहीं है। (यानी तुम भी उन्हें दण्ड देने या मारने से रुक जाओ)”। (कु. 2:190 से 193)

मोटे अक्षरों वाले शब्दों का जोड़ कर वह कथित आयत बनती है जो ऊपर दर्शाई गई और जिसे विरोधी प्रस्तुत करते हैं। कोई केवल प्रसंग से काट भर दे, बात कुछ से कुछ होजाती है, यहाँ तो आयत में काट छाँट भी की जाती है। गीता का विषय आध्यात्मिक शान्ति है। यदि कोई केवल उन्हीं श्लोकों को जो इस पुस्तिका में उद्धरित हैं, गीता की मूल शिक्षा बता कर प्रस्तुत करे और अन्य लोग गीता पढ़े बिना विश्वास करलें तो यह माना जाएगा कि गीता बिना किसी दया के सिंहासन लेने के लिये सर्ग संबंधियों से युद्ध करने का उपदेश देती है। उसमें भी यदि बहुत थोड़ी सी काट छाँट और करदी जाए तो गीता के युद्ध के मात्र दो उद्देश्य रह जाते हैं, सिंहासन और कीर्ति।

यह (युद्ध से बचना) कीर्ति देने वाला साधन नहीं है। इसलिए हे अर्जुन, तुम कायर मत बनो। यह तुम्हें शोभा नहीं देता। हे शत्रुओं को मारने वाले अर्जुन, तुम अपने मन की इस दुर्बलता को त्यागकर युद्ध करो। (गीता 2:2, 3)

“हे अर्जुन, सबके शरीर में रहने वाला यह आत्मा सदा अवध्य है, इसलिए किसी भी प्राणी के लिए तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए। क्योंकि क्षत्रिय के लिए युद्ध से बढ़कर दूसरा कोई कल्याणकारी कर्म नहीं है। और यदि तुम इस युद्ध को नहीं करोगे, तब कीर्ति को खोकर पाप को प्राप्त होगे। युद्ध में मरकर तुम स्वर्ग जाओगे या विजयी होकर पृथ्वी का राज्य

भोगोगे; इसलिए हे कौन्तेय, तुम युद्ध के लिए
निश्चय करके खड़े हो जाओ". (2:30 से 37)

यदि प्रसंग को समझने का प्रयास न किया जाए तो गीता को कठोर निर्दयता का ग्रंथ बताने के लिये एक ही श्लोक पर्याप्त है।

"हे अर्जुन, सबके शरीर में रहने वाला यह आत्मा सदा अवध्य है, इसलिए किसी भी प्राणी के लिए तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए". (गीता 2:30)

वेद में प्राणिमात्र से प्रेम की अनेकों अमूल्य शिक्षाएं हैं।

"मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे" (यजुर्वेद 36:18)
हम सब परस्पर मित्र की दृष्टि से देखें।

"माजीवेभ्यः प्रमदः" (अर्थर्व. 8:1:7)
प्राणियों की ओर से बेपरवाह न हो।

इन सुन्दर शिक्षाओं के साथ निम्न वेद मन्त्र पढ़ें।

"वृश्च प्रवृश्च संवृश्च दह प्रदह संदह" (अर्थर्व. 12:5:62)
तू काट डाल, चीर डाल, फाड़ डाल, जला दे, फूंक दे, भस्म कर दे।

यदि मानव समाज के आदिकाल की युद्ध की परिस्थितियों से इसे काट दें तथा ऊपर उद्धरित प्रेम संबंधी शिक्षाओं को छिपालें तो यही कछ कहा जाएगा कि वेद हिंसा फैलाते हैं, अमानवीय पशु पृथुति के सूचक हैं, इन पर प्रतिबंध लगादो... आदि।

परस्पर शत्रुता, ध्येय में एकता !

अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिये कुरआन के साथ अन्याय में हिन्दू व मुसलमान अतिवादी गुट एकमत हैं। दोनों कुरआन की आयतों को प्रसंग से काट कर यह प्रचार करते हैं कि काफिरों[‡] की हत्या करना कुरआन के अनुसार जिहाद है। जिसके पुण्यस्वरूप स्वर्ग की प्राप्ति होती है। हिन्दू अतिवादी संगठनों का उद्देश्य सामान्य हिन्दुओं की भावनाओं को उत्तेजित कर मुसलमानों से टकराओं का वातावरण पैदा करना है ताकि हिन्दू राष्ट्र की स्थापना होसके। मुसलमान अतिवादी संगठनों को भारत में इस्लामी शासन की स्थापना के लिये जिहादी कार्यकर्त्ताओं की आवश्यकता है। तथाकथित राम राज्य और इस्लामी खिलाफत की स्थापनाओं के प्रयासों में दिलों के विभाजन और राष्ट्र के खण्डन से दोनों गुटों को कोई सरोकार नहीं। अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिये कुरआन की शिक्षाओं को तोड़-मोड़ कर फैलाने में दानों को एक प्रभावी हथियार हाथ आगया है।

हथियार छीन लो :

हम क्या कर सकत हैं? देश के हिन्दू मुसलमानों का भारी बहुमत बड़ी आसानी से इनके शत्रु छीन कर इन्हें निहत्ता कर सकता है। मुसलमानों का कर्तव्य है कि कुरआन का मात्र अरबी पाठ करने के बजाय अनुवाद सहित अध्ययन करें और सनातन धर्मियों की देश व राष्ट्र के प्रति ज़िम्मेदारी की माँग है कि कुरआन के विषय में किसी

[‡] काफिर शब्द की व्याख्या के लिये हमारा प्रकाशित फोलडर 'आप स्वयं काफिर' मुफ्त मंगवाएं।

दुष्प्रचार से प्रभावित होने के बजाय कुरआन के किसी अच्छे जानकार से मिलकर स्पष्टीकरण लेलिया करें।

आओ जिहाद करें :

उन्हें निहत्ता करना तो कम से कम स्तर की ज़िम्मेदारी है। उत्तम तो यह था कि नफरत के इन हथियारों को छीन कर फेंकने के बाद अपना प्रेम शरन्त्र ग्रहण करके सवयं जिहाद करें। हिन्दू-मुस्लिम ही नहीं, अन्य भी इन दानों धर्मों के मूल ग्रन्थों, वेद और कुरआन दोनों का अध्ययन करें। यदि ऐसा होसका तो वे यह पाएंगे कि जिन्हें इस पुस्तक में बार-बार दो अलग धर्म कहा गया, वे वस्तुतः एक ईश्वरीय धर्म के विकृत मत हैं। एक ईश्वर द्वारा प्रदत्त एकमात्र धर्म का संस्कृत नाम सनातन धर्म एवं अरबी भाषा में उसी एक धर्म का नाम ‘इस्लाम’ है। वेद और कुरआन उसी एक धर्म के आदि व अन्तिम ग्रन्थ हैं^१। सत्रधर्म हेतु ईश्मार्ग में भर्सक प्रयास को जिहाद कहते हैं तो उस एकमात्र सद्धर्म की स्थापना हेतु — आओ जिहाद करें।

^१ धर्म की एकता के विषय को विस्तार से जानने के लिये देखें हमारी पुस्तकें ‘अब भी न जागे तो’ और ‘वेद और कुरआन - कितने दूर कितने पास’

